eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

कबीर : चिन्तन के विविध आयाम

[1]डॉ0 सरिता दुबे
[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी, संत गणिनाथ राजकीय स्ना0 महा0, मुहम्मदाबाद, गोहना, मऊ (उ0प्र0)

Received: 17 Dec 2023, Accepted: 15 January 2024, Published online: 01 February 2024

Abstract

अपने मानवतावादी विचारों के कारण ही कबीरदास ने धर्म व समाज में व्याप्त बुराईयों व कुरीतियों पर तीखा व्यंग्य करने से भी गुरेज नहीं किया है, जिस कारण कुछ चिंतक उन्हें धर्म सुधारक और समाज सुधारक के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं। कबीरदास के समय उत्तर भारत में समाज में अनेक कुरीतियाँ जैसे– पाखण्ड, जातिप्रथा, छुआछूत, ऊँच–नीच का भाव, मिथ्याडम्बर आदि व्यापक रूप से फैले हुए थे जिससे सामाजिक संतुलन बिगड़ रहा था। अतएव उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी जो उस समय की सामाजिक विषमताओं को दूर कर सके और उसके विरुद्ध निर्भीक भाव से बोल सके तथा समाज में सुन्दर तथा सुदृढ़ व्यवस्था स्थापित कर सके। ''ऐसे सक्रान्ति युग में महात्मा कबीर का प्रार्दुभाव हुआ और उन्होंने तत्कालीन अव्यवस्था, आडम्बरप्रियता, मिथ्यावादिता, अहंकारप्रियता, रूढ़िवादिता, जातिगत श्रेष्ठता तथा मिथ्या धार्मिकता का भली प्रकार अध्ययन करके उन्हें दूर करने का बीड़ा उठाया।'

मुख्य बिंदु – कबीर चिन्तन, मानवतावादी विचार, धर्म सुधारक, समाज सुधारक, विविध आयाम।

Introduction

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी लिखते हैं– ''बाह्याचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी कबीर को पसंद नहीं थी। वे इनसे मुक्त मनुष्यता को ही प्रेमभक्ति का पात्र मानते थे। धर्मगत विशेषताओं के प्रति सहनशीलता और संभ्रम का भाव भी उनके पदों में नहीं मिलता। परन्तु वे मनुष्य मात्र को समान मर्यादा का अधिकारी मानते थे; जातिगत, कुलगत, आचारगत श्रेष्ठता का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था।''

कबीरदास जी ने स्वयं उद्घोषणा की है कि–

''मसि कागद छुओ नहिं कलम गहि नहिं हाथ''

जिससे स्पष्ट होता है कि कबीरदास जी का ज्ञान अनुभव तथा श्रुत परम्परा पर आधारित है, ऐसे में कबीरदास जी के चिंतन पर अनेक विचारकों ने अनेक प्रकार से विचार व्यक्त किए हैं। कोई इन्हें भक्त कवि के रूप में देखता है तो कोई समाज सुधारक के रूप में तो कोई धर्मोपदेशक के रूप में सिद्ध करने हेतु प्रयासरत रहा है। किन्तु समग्र रूप से देखा जाय तो कबीरदास जी का कृतित्व जीवन एवं दर्शन के विविध आयामों को स्पर्श करता है। जीवन तथा दर्शन का कोई ऐसा पक्ष शायद ही हो जो कबीर के चिन्तन से अछूता हो।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

यहाँ पर हम कबीरदास द्वारा उच्चरित वाणियों के आधार पर उनके चिन्तन के विविध आयामों पर विचार करेंगे। मध्यकालीन विशेषतः भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य के विविध काव्यधाराओं के भक्त कवियों में शायद ही कोई इतना विविध आयामी व्यक्तित्व का धनी हुआ। विचारकों ने अपने–अपने अनुसार कबीरदास को भक्त, समाजसुधारक, योगी, दार्शनिक, संत, कवि इत्यादि सिद्ध करने का प्रयास किया है।

कबीरदास के काव्य को समग्र रूप से देखा जाय तो कबीरदास सबसे पहले और अन्ततः एक भक्त हैं, भक्ति की अजस्रधारा उनके पदों में प्रवाहित होती है। भक्ति के लिए सर्वाधिक आवश्यक तत्व है– आत्म समर्पण जो कबीर के यहाँ उच्चकोटि का है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार– ''वे मूलतः भक्त थे। भगवान पर उनका अविचल अखंड विश्वास था। .....कबीरदास का यह भक्त रूप ही उनका वास्तविक रूप है। इसी केन्द्र के इर्द–गिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे हैं।''[1]

भगवान और भक्त के मध्य जो सम्बंध है, वह गूँगे के गुड़ के समान है, जिसे कहकर समझाया नहीं जा सकता है। इसे वही समझ सकता है जो स्वयं इस भक्ति के आनंद रस में डूबा हो। भक्ति के लिए सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व है– अनन्य समर्पण जो कबीरदास की वाणियों में जगह–जगह दर्शनीय है। वह अपने आपको अपने आराध्य (राम) का कुत्ता तक कहते हैं। जिसके गले में अपने मालिक के नाम की जंजीर पड़ी है और वह जिधर चाहे उसे खींचकर ले जाय।

भगवत् भक्ति का ही अनन्य स्वरूप उनके दाम्पत्य विषयक पदों में दृष्टिगत होता है। जहाँ व्याकुल जीवात्मा अपने पीउ से मिलने को तत्पर है और अपने प्रेमभाव और अनुराग को तरह–तरह से उद्घाटित करती है। ऐसे पदों में कबीरदास के रहस्यात्मक विचारों का भी परिचय मिलता है।

भगवत् भक्ति कहीं–कहीं माँ और बेटे के रूप में भी प्रकट होती चलती है, जब भक्त अपने को पुत्र और ईश्वर को माँ के रूप में संबोधित करता है और माँ और पुत्र के सम्बंधों की दुहाई देते हुए अपने कृत अपराधों की क्षमा मांगता हुआ सा कह उठता है– ''हरि जननी मैं बालक तोरा

काहे न अवगुन बकसहु मेरा।''

शास्त्रीयता के आधार पर बात करें तो भक्ति के जो नवधा भेद बताए गए हैं उनमें से अधिकांश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कबीर के काव्य में उपलब्ध मिलते हैं। डॉ0 पारसनाथ तिवारी लिखते हैं कि– ''कबीर की आस्था शास्त्रविधि से की जाने वाली नवधा आदि भक्तियों में नहीं थी। फिर भी उनकी वाणियों में इनके मानसिक या आध्यात्मिक रूप अवश्य मिल जाते हैं।''[2]

भगवान और भक्ति पर अपने अनुभवों को व्यक्त करते–करते ही कबीरदास को भक्ति व धर्म में व्याप्त बाह्याचारों, आडम्बरों, कर्मकाण्डों के जंजाल को साफ करने की जरूरत महसूस हुई। भगवान और भक्त का सम्बंध सिर्फ आत्मसमर्पण और निर्मल भाव पर आधृत होता है लेकिन मध्यकालीन धर्मसाधना में बाह्याडम्बरों और कर्मकाण्डों, मिथ्याचारों का बोलबाला हो गया था। ''एक सच्चे मानवतावादी साधक के रूप में कबीरदास ने मानव–मानव के मध्य भेद उत्पन्न करने वाले

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

आडम्बरों, विचारों, परम्पराओं, कर्मकाण्डों तथा अंधविश्वासों का प्रबल खण्डन किया है। कबीरदास का मानना है कि सब मानव एक ही ईश्वर से उत्पन्न हैं तो फिर उनमें भेद क्यों ? कबीरदास जी कहते हैं–

''एक बूंद एक मल–मूतर एक चाम एक गूदा।
एक ज्योति ते सब ऊपजा कौन ब्राह्मण कौन सूदा।''[3]

अपने मानवतावादी विचारों के कारण ही कबीरदास ने धर्म व समाज में व्याप्त बुराईयों व कुरीतियों पर तीखा व्यंग्य करने से भी गुरेज नहीं किया है, जिस कारण कुछ चिंतक उन्हें धर्म सुधारक और समाज सुधारक के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं। कबीरदास के समय उत्तर भारत में समाज में अनेक कुरीतियाँ जैसे– पाखण्ड, जातिप्रथा, छुआछूत, ऊँच–नीच का भाव, मिथ्याडम्बर आदि व्यापक रूप से फैले हुए थे जिससे सामाजिक संतुलन बिगड़ रहा था। अतएव उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज सुधारक की आवश्यकता थी जो उस समय की सामाजिक विषमताओं को दूर कर सके और उसके विरुद्ध निर्भीक भाव से बोल सके तथा समाज में सुन्दर तथा सुदृढ़ व्यवस्था स्थापित कर सके। ''ऐसे सक्रान्ति युग में महात्मा कबीर का प्रार्दुभाव हुआ और उन्होंने तत्कालीन अव्यवस्था, आडम्बरप्रियता, मिथ्यावादिता, अहंकारप्रियता, रूढ़िवादिता, जातिगत श्रेष्ठता तथा मिथ्या धार्मिकता का भली प्रकार अध्ययन करके उन्हें दूर करने का बीड़ा उठाया।''[4] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भी लिखते हैं– ''बाह्याचार की निरर्थक पूजा और संस्कारों की विचारहीन गुलामी कबीर को पसंद नहीं थी। वे इनसे मुक्त मनुष्यता को ही प्रेमभक्ति का पात्र मानते थे। धर्मगत विशेषताओं के प्रति सहनशीलता और संभ्रम का भाव भी उनके पदों में नहीं मिलता। परन्तु वे मनुष्य मात्र को समान मर्यादा का अधिकारी मानते थे; जातिगत, कुलगत, आचारगत श्रेष्ठता का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था।''[5]

कबीरदास के चिन्तन के आयामों पर दृष्टिपात करने पर उनका एक दार्शनिक चिन्तक या साधक का स्वरूप उभरता है जिसका चिन्तन इहलौकिक तक की सीमित न होकर पारलौकिक तक विस्तृत है। कबीरदास ने अपनी वाणियों में ब्रह्म, माया, जीव, जगत आदि पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि चिन्तन सम्बन्धी ये बातें वेद, शास्त्र, उपनिषद् आधारित न होकर स्वानुभव आधारित हैं। अपने चिंतन पक्ष की सबलता हेतु कभी भी कबीरदास शास्त्रीय धर्म ग्रंथों का सम्बल खोजते नहीं दिखे हैं। उनके बारे में कुछ विद्वानों की मान्यता है कि उनका कोई दर्शन या सिद्धान्त नहीं है क्योंकि वे पढ़े–लिखे नहीं थे लेकिन कबीर की वाणियों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने से यह ज्ञात होता है कि उनका तत्त्व चिन्तन बड़ा सूक्ष्म और गंभीर है।

कबीर का ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अवर्णनीय, अजन्मा अर्थात् जन्म या अवतार धारण करने वाला नहीं है। इतना अवश्य है कि ईश्वर के अनेक नामों में कबीर को 'राम' नाम सर्वाधिक प्रिय है। अपने अधिकांश रहस्यात्मक (दाम्पत्य विषयक) पदों में 'पिउ राम' को सम्बोधित करके ही अपने प्रेम भावों को निवेदित किया है। डॉ0 पारसनाथ तिवारी लिखते हैं– ''उनका विचार है कि वर्णमाला के बावन अक्षरों में केवल 'र' और 'म' में ही चित्त लगाना चाहिए– बावन अक्खिर सोधि कै ररै ममै

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

चित्त लाई। किन्तु इस प्रसंग में हमें पुनः स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि कबीर के राम 'दशरथ सुत' नहीं हैं।''[6]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के ब्रह्मविषयक विचार को इस प्रकार व्यक्त किया है– ''इसी त्रिगुणातीत, द्वैतद्वैतविलक्षण, भावाभावविनिर्मित, अलख, अगोचर, अगम्य, प्रेम पारावार भगवान को कबीरदास ने 'निर्गुण राम' कहकर सम्बोधित किया है। वह समस्त ज्ञान तत्त्वों से भिन्न है फिर भी सर्वमय है। वह अनुभवैकगम्य है, केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है।''[7] परमेश्वर विषयक यह अनुभव 'गूंगे की गुड़' की भांति है, जिसके आनन्द को रस को कहकर नहीं समझाया जा सकता है। आत्मा उसी सर्वव्याप्त अविनाशी ब्रह्म का अंश है जो माया के वशीभूत होकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया है। माया रूपी अविद्या ने उसे सांसारिक मोह बंधन में बांध रखा है, जैसे ही माया रूपी आवरण का नाश होगा ज्ञान का प्रकाश होगा, आत्मा परमात्मतत्त्व में समाहित हो जाएगी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– ''कबीरदास के पदों से जान पड़ता है कि उन्होंने माया को अविद्या से अलग करके नहीं देखा है। .....माया ही कबीरदास के मन से जीवों को भरमा रही है।''[8] कबीरदास की वाणियों में माया को महाठगिनी, विश्वमोहिनी इत्यादि रूपों में दर्शाया गया है जिसका काम ही जीवों को ठगना, भरमाना और मोह माया के बंधन से भ्रमित करना है।

''माया महाठगिनी हम जानी।
तिरगुन फांस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।''

कबीरदास ने उसे डाइन, कामिनी, सर्पिणी आदि न जाने कितने तिरस्कार सूचक नामों से भी अभिहित किया है। वह इतनी दुराधर्ष है कि जन्म लेने के साथ ही जीव को धर दबोचती है, बड़े–बड़े योगी, यती तथा संन्यासियों को भी न्ही छोड़ती। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मान आदि इसके सहायक हैं।

कबीरदास एक संत के रूप में भी देखे गये जिसकी साधना पद्धति नाथों व सिद्धों की साधना पद्धति से जुड़ी हुई व प्रभावित देखी गई। हठयोग, सहज साधना, शून्य समाधि, कुण्डलिनी, सहस्त्रसार, उलटबासियाँ इत्यादि पर अपने विचार व्यक्त किये हैं जो उन्हें परम्परा से प्राप्त हुई थी। हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– ''कबीरदास योगियों के द्वारा प्रभावित तो बहुत हैं पर वे स्वयं वही नहीं हैं जो योगी हैं।''[9] स्पष्ट है कि कबीर की वाणियों में योगरूपकों और उलटबाँसियों का वर्णन उपलब्ध है लेकिन वह सिर्फ साधनात्मक धरातल पर ही है। वास्तविक प्राप्ति तो भक्ति द्वारा ही संभव है।

कवि के रूप में कबीरदास को देखा जाय तो सर्वप्रथम यह उल्लेखनीय है कि कबीर ने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके अपनी बातें नहीं कहीं थी किन्तु भाव, विचार, छंद विधान उक्तिवैचित्र्य व सर्वाधिक मानवतावादी नजरिया उन्हें एक कवि के रूप में प्रतिष्ठित करने में सहायक रहा। एक उपदेशक के रूप में, समाज सुधारक के रूप में, एक भक्त के रूप में कबीर की वाणियों में वह आकर्षण है जो श्रोता को बरबस आकृष्ट कर लेती है। भक्त के रूप में प्रेममय माधुर्य पुकार हो या धर्मोपदेश के रूप में कठोर फटकार या समाजसुधारक के रूप में सामाजिक व्यवस्था पर कुठाराघात

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

हो– इनकी बातों को जनता ने सुना गुना और धुना और उससे सीखा, और यह परम्परा आज भी कंठस्थ रूप में कहीं न कहीं कबीरदास के कवि व्यक्तित्त्व को प्रतिष्ठित किए हुए है।

कबीरदास के विविध आयामी व्यक्तित्व को स्थापित करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– ''हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा व्यक्तित्त्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वंद्वी जानता है– तुलसीदास।''[10]

संदर्भ ग्रन्थ–

1. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, पृ0 172, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवीं आवृत्ति, 2002, पृ0 172
2. तिवारी, डॉ0 पारसनाथ, कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, अष्टम् संस्करण–2003, पृ0 73
3. सम्पा0 स्नातक विजेन्द्र, कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ0 246
4. सक्सेना, द्वारिका प्रसाद, हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, अष्टम् संस्करण–1985–86, पृ0 108
5. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवीं आवृत्ति, 2002, पृ0 172
6. तिवारी, डॉ0 पारसनाथ, कबीर वाणी सुधा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, अष्टम् संस्करण–2003, पृ0 38
7. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवीं आवृत्ति, 2002, पृ0 104
8. वही, पृ0 92
9. वही, पृ0 81
10. वही, पृ0 170